इकाई 13 अर्थोपक्षेपक, अर्थप्रकृतियाँ एवं कार्यावस्थायें

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 अर्थोपक्षेपक

13.2.1 विष्कम्भक

13.2.2 प्रवेशक

13.2.3 चूलिका

13.2.4 अङ्कावतार

13.2.5 अङ्कमुख (अङ्कास्य)

13.3 अर्थप्रकृतियाँ

13.3.1 बीज

13.3.2 बिन्दु

13.3.3 पताका

13.3.4 प्रकरी

13.3.5 कार्य

13.4 कार्यावस्थायें

13.4.1 आरम्भ

13.4.2 यत्न (प्रयत्न)

13.4.3 प्राप्त्याशा

13.4.4 नियताप्ति

13.4.5 फलागम (फलयोग)

13.5 सारांश

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.7 अभ्यास प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- अर्थोपक्षेपकों के स्वरूप से परिचित होंगे।
- नाटक में अर्थप्रकृतियों की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- कार्यावस्थाओं के स्वरूप को स्पष्ट रूप से जान सकेंगे।
- नये पदों के प्रकृति-प्रत्ययों को समझ पायेंगे।

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप रूपक के भेदों तथा नाटक के लक्षण की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। नाटक के लक्षण में आपने पढ़ा कि **'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्'** अर्थात् नाटक ख्यातवृत्त वाला होना चाहिए तथा पाँच सन्धियों से समन्वित होना चाहिए। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण ये पाँच नाट्यसन्धियाँ कहलाती हैं। ये पाँच सन्धियाँ क्रमशः पाँच अर्थप्रकृतियों एवं पाँच अवस्थाओं के योग से बनती हैं। नाटक के मंचन में अर्थोपक्षेपकों का भी विशेष स्थान है। अर्थोपक्षेपकों के द्वारा ही हम दर्शकों को उन घटनाओं की सूचना देते हैं जिनका अभिनय मंच पर नहीं किया जा सकता है। अर्थप्रकृतियाँ तथा कार्यावस्थायें भी नाटक के विकास में महत्तवपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। इस प्रकार 'संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य' पाठ्यक्रम की इस इकाई में आप अर्थोपक्षेपकों, अर्थप्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं के विषय में अध्ययन करेंगे।

13.2 अर्थोपक्षेपक

उपक्षिपन्ति = उपस्थापयन्ति अर्थान् इति उपक्षेपकाः, अर्थात् जो अर्थों को उपक्षिप्त (बीच-बीच में सूचित/उपस्थापित) करते हैं उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं। अर्थोपक्षेपकों का क्या प्रयोजन है? इसके लिए साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कहते हैं कि –

अङ्केष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च सम्मता।

या च स्याद्वर्षपर्यन्तं कथा दिनद्वयादिजा।।51।।

अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः।

अङ्केषु अदर्शनीया कथा युद्धादिकथा।

वर्षादूर्ध्वं तु यद्वस्तु तत्स्याद्वर्षादधोभवम्।।52।।

उक्तं हि मुनिना–

'अङ्कच्छेदे कार्यं मासकृतं वर्षसञ्चितं वापि।

तत्सर्वं कर्तव्यं वषादूर्ध्वं न तु कदाचित्।।'

एवं च चतुर्दशवर्षव्यापिन्यपि रामवनवासे ये ये विराधवधादयः कथांशास्ते ते वर्षवर्षावयवदिनयुग्मादीनामेकतमतेन सूचनीया न विरुद्धाः।

दिनावसाने कार्यं यद् दिने नैवोपपद्यते।

अर्थोपक्षेपकैर्वाच्यमङ्कच्छेदं विधाय तत्।।53।।

अर्थात् जो कथा (युद्ध आदि विषयक) अंक में दिखाने योग्य तो नहीं, किन्तु बतानी आवश्यक है, अथवा दो दिन से लेकर जो वर्षपर्यन्त होने वाली है एवं इसके अतिरिक्त कोई अन्य कथा (चाहे वह एक दिन की ही क्यों न हो) जो अतिविस्तृत हो, उसको भी अर्थोपक्षेपकों के द्वारा ही सूचित करना चाहिए।

नाट्याचार्य का यही आदेश है – 'वह वृत्त जो एक मास में घटित हुआ हो अथवा एक वर्ष में सम्पन्न हुआ हो, अङ्कच्छेद अर्थात् विष्कम्भक आदि अर्थोपक्षेपक-प्रकारों में से किसी एक के द्वारा वर्णित किया जा सकता है। किन्तु एक वर्ष से अधिक समय में घटी घटना का उपनिबन्धन कदापि नहीं होना चाहिए।'

और वस्तुतः इसीलिए राम विषयक रूपक प्रबन्धों में, राम के 14 साल के वनवास काल में घटित, विराध-वध आदि-आदि कथांशों को, एक वर्ष के भीतर अथवा एक दिन या दो दिन में ही घटित रूप से अर्थोपक्षेपकों द्वारा उपनिबद्ध किया गया है जिसमें नाट्यशास्त्र की मर्यादा की भी पूर्ण रक्षा हुई है।

जो कार्य दिन के अवसान में सम्पाद्य (सम्पन्न करने योग्य) हो, दिन में न हो सकता हो तो उसे भी अंकच्छेद करके सूचित करना चाहिए।

अथ के अर्थोपक्षेपका इत्याह –

अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ।

चूलिकाङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि।।54।।

अर्थोपक्षेपक पाँच होते हैं – 1. विष्कम्भक, 2. प्रवेशक, 3. चूलिका, 4. अंकावतार, 5. अंकमुख।

इनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है –

13.2.1 विष्कम्भक

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः।।55।।

मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।

शुद्धः स्यात्स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।।56।।

तत्र शुद्धो यथा– मालतीमाधवे श्मशाने कपालकुण्डला। सङ्कीर्णो यथा– रामाभिनन्दे क्षपणककापालिकौ।

भूत और भविष्य कथाओं का सूचक, कथा का संक्षेप करने वाला अंश विष्कम्भक कहलाता है। यह अंक के आदि में रहता है। जब एक ही मध्यम पात्र अथवा दो मध्यम पात्र प्रयोग करते हैं तब इसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं और यदि नीच तथा मध्यम पात्रों द्वारा प्रयोग किया जाये तो इसे मिश्र विष्कम्भक कहते हैं।

शुद्ध विष्कम्भक का उदाहरण – मालतीमाधव के पञ्चम अंक में श्मशान में स्थित कपालकुण्डला के द्वारा।

मिश्र (संकीर्ण) विष्कम्भक का उदाहरण – रामाभिनन्दन में क्षपणक और कापालिक के द्वारा।

13.2.2 प्रवेशक

अथ प्रवेशकः –

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।

अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।।57।।

अङ्कद्वयस्यान्तरिति प्रथमाङ्केऽस्य प्रतिषेधः। यथा– वेण्यामश्वत्थामाङ्के राक्षसमिथुनम्।

प्रवेशक भी विष्कम्भक के सदृश होता है, किन्तु इसका प्रयोग नीच पात्रों के द्वारा करवाया जाता है और इसमें उक्तियाँ उदात्त (उत्कृष्ट रमणीय) नहीं होती।

इसका प्रयोग दूसरे अंक के आगे किया जाता है, पहले अंक में नहीं। जैसे– वेणीसंहार के चतुर्थ अंक में राक्षसों की जोड़ी द्वारा।

13.2.3 चूलिका

अथ चूलिका

अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका।

यथा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ– '(नेपथ्ये) भो भो वैमानिकाः, प्रवर्तन्तां रङ्गमङ्गलानि' इत्यादि। 'रामेण परशुरामो जितः' इति नेपथ्ये पात्रैः सूचितम्।

जवनिका (पर्दे) के भीतर स्थित पात्रों के द्वारा की हुई वस्तु (अर्थ) की सूचना को चूलिका कहते हैं, जैसे– महावीरचरितम् नाटक के चतुर्थ अंक में,

(नेपथ्य से) अरे वैमानिक गण रंगमंगल कार्य प्रारम्भ किए जायें। आदि।

यहाँ नेपथ्यवर्ती पात्र यह सूचना दे रहे हैं कि राम ने परशुराम को जीत लिया है।

13.2.4 अङ्कावतार

अथाङ्कावतारः –

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः।।58।।

यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः।

यथा– अभिज्ञाने पञ्चमाङ्के पात्रैः सूचितः षष्ठाङ्कस्तदङ्कस्याङ्गविशेष इवावतीर्णः।

पूर्व अंक के अन्त में उसी के पात्रों द्वारा सूचित किया गया जो अगला अंक अवतीर्ण होता है उसे अंकावतार कहते हैं, जैसे– शाकुन्तलम् के पंचम अंक के अन्त में उसके पात्रों द्वारा सूचित किया हुआ षष्ठ अंक पूर्व से अविभक्त (उसका अंक जैसा) ही अवतीर्ण हुआ है।

13.2.5 अङ्कमुख (अङ्कास्य)

अथाङ्कमुखम्

यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाऽखिला।।59।।

तदङ्कमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत्।

यथा– मालतीमाधवे प्रथमाङ्कादौ कामन्दक्यवलोकिते भूरिवसुप्रभृतीनां भाविभूमिकानां परिक्षिप्तकथाप्रबन्धस्य च प्रसङ्गात्संनिवेशं सूचितवत्यौ।

जहाँ एक ही अंक में सब अंकों की अविकल सूचना की जाये और जो बीजभूत अर्थ का सूचक हो असे अंकमुख कहते हैं।

जैसे– मालतीमाधव के प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही कामन्दकी और अवलोकिता ने अगली सब बातों की सूचना दे दी है।

अंकमुख का दूसरा लक्षण –

अङ्कान्तपात्रैर्वाङ्कस्य छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।।60।।

अङ्कान्तपात्रैरङ्कान्ते प्रविष्टैः पात्रैः। यथा वीरचरिते द्वितीयाऽङ्कान्ते –

'(प्रविश्य)

सुमन्त्रः – भगवन्तौ वशिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सभार्गवानाह्वतः।

इतरे – क्व भगवन्तौ?

सुमन्त्रः – महाराजदशरथस्यान्तिके।

इतरे – तत्तत्रैव गच्छामः' इत्यङ्कपरिसमाप्तौ। '(ततः प्रविशन्त्युपविष्टा वशिष्ठविश्वामित्रपरशुरामाः) इत्यत्र पूर्वाऽङ्कान्त एव प्रविष्टेन सुमन्त्रपात्रेण शतानन्दजनकथाविच्छेदे उत्तराङ्कमुखसूचनादङ्कास्यम्' इति।

एतच्च धनिकमतानुसारेणयेक्तम्। अन्ये तु– ' अङ्कावतरणेनैवेदं गतार्थम्' इत्याहुः।

अंक के अन्त में प्रविष्ट किसी पात्र के द्वारा विच्छिन्न अंक की अगली कथा का सूचन करने से अंकास्य अथवा अंकमुख होता है।

जैसे– महावीरचरित में द्वितीय अंक के अन्त में सुमन्त्र का प्रवेश–

यहाँ पूर्व अंक के अन्त में प्रविष्ट सुमन्त्र रूप पात्र ने अगले अंक की सूचना की है ।

सुमन्त्र – भगवान वशिष्ठ और विश्वामित्र भार्गव परशुराम आप सबको बुला रहे हैं।

और लोग – कहाँ हैं भगवान वशिष्ठ और विश्वामित्र?

सुमन्त्र – महाराज दशरथ के पास विराजमान हैं।

और लोग – तब वहीं चला जाए।

यहाँ द्वितीय अंक के अन्त में वशिष्ठ, विश्वामित्र और परशुराम का प्रवेश होता है। इसे अंकास्य इसलिए माना गया है क्योंकि पूर्व अंक में प्रविष्ट पात्र सुमन्त्र द्वारा जनक और शतानन्द सम्बन्धी कथावस्तु का विच्छेद हो जाता है और अग्रिम अंक की कथावस्तु के मुख अथवा आरम्भ की सूचना दे दी जाती है।

अंकास्य (अंकमुख) का यह लक्षण आचार्य धनिक के मतानुसार बताया गया है। अन्य लोगों के मत में तो अंकास्य को अंकावतार के ही अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है।

13.3 अर्थप्रकृतियाँ

बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च।।64।।

अर्थप्रकृतयः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि।

शब्दार्थ – बीजम्, बिन्दुः, पताका च, प्रकरी, कार्यम् एव च = बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। इति पञ्च अर्थप्रकृतयः = ये पाँच अर्थ की प्रकृतियाँ। ज्ञात्वा = जानकर, समझकर। यथाविधि = विधिपूर्वक। योज्याः = प्रयोग करनी चाहिए।

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पाँच अर्थ की प्रकृतियाँ हैं। अर्थ = प्रयोजन। प्रकृति = साधनोपाय। अर्थप्रकृति अर्थात् प्रयोजन की सिद्धि में उपायरूप हेतु अथवा साधन। यहाँ प्रकृति शब्द हेतु अथवा साधन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् नाट्यरूपी प्रयोजन की सिद्धि में जो साधन अथवा हेतु बनती हैं उसे अर्थप्रकृति कहते हैं। इन अर्थप्रकृतियों को समझकर विधिपूर्वक (यथाविधि) प्रयोग करना चाहिए।

13.3.1 बीज

अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतवः। तत्र बीजम् –

अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति।।65।।

फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते।

यथा– रत्नावल्यां वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुर्दैवानुकूल्यलालितो यौगन्धरायणव्यापारः। यथा वा – 'वेण्यां द्रौपदीकेशसंयमनहेतुर्भीमसेनक्रोधोपचित्' युधिष्ठिरोत्साहः।

शब्दार्थ – यद् अल्पमात्रम् समुद्दिष्टम् = जिसका पहले अल्पमात्र कथन (वर्णन) किया जाये। बहुधा विसर्पति = उसका विसर्पण (विस्तार) अनेक प्रकार से होता है। तत् बीजम् अभिधीयते = उसे बीज नामक अर्थप्रकृति कहते हैं। फलस्य प्रथमः हेतुः = (यह अर्थप्रकृति) फल की सिद्धि का प्रथम हेतु होती है।

जिसका पहले अल्पमात्र कथन (वर्णन) किया जाये, किन्तु उसका विसर्पण (विस्तार) अनेक प्रकार से हो उसे बीज नामक अर्थप्रकृति कहते हैं। यह अर्थप्रकृति फल की सिद्धि का प्रथम हेतु होती है।

इसका अभिप्राय यह है कि जैसे कोई बीज अपनी अंकुरित अवस्था में छोटे रूप में दिखाई देता है और बाद में बहुत प्रकार से फैलता चला जाता है तथा फल का आदि कारण भी वही होता है, ठीक वैसे ही बीज नामक अर्थप्रकृति भी होती है। पहले उसका स्वल्पमात्र वर्णन होता है तथा बाद में अनेक तरह से विस्तार होता है। रूपक (नाटक आदि) में नायक का मुख्य उद्देश्य अथवा नायक के लिए उचित उपयुक्त उद्देश्य ही फल कहलाता है, और उस फल की प्राप्ति के लिए हेतुरूप, उपायरूप अथवा साधनरूप जो पहला कार्य-कलाप किया जाता है उसे बीज नामक अर्थप्रकृति कहते हैं।

जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन को रत्नावली की प्राप्ति फल है तथा भाग्य की अनुकूलता से युक्त मन्त्री यौगन्धरायण का किया गया कार्य कलाप (प्रयास आदि) उस फल का प्रथम हेतु है, पहला कारण है। यदि यौगन्धरायण का योजनाबद्ध प्रयास नहीं होता तो वत्सराज उदयन को रत्नावली की प्राप्ति भी नहीं होती।

इसका अन्य उदाहरण जैसे– वेणीसंहार नाटक में द्रौपदी के केश-संयमन का (केश बाँधने का) हेतुभूत भीमसेन के क्रोध से युक्त, युधिष्ठिर का युद्ध के लिए उत्साह।

13.3.2 बिन्दु

अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।।66।।

यथा रत्नावल्यामनङ्गपूजापरिसमाप्तौ काव्यार्थविच्छेदे सति 'उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते' इति सागरिका श्रुत्वा '(सहर्षम्) कथमेष स उदयननरेन्द्रः' इत्यादिरवान्तरार्थहेतुः।

शब्दार्थ – अवान्तरार्थविच्छेद = अवान्तर कथा के विच्छिन्न हो जाने पर (भी)। उच्छेदकारणम् = अविच्छेद का कारण। बिन्दुः = बिन्दु कहलाता है अर्थात् उसे बिन्दु नामक अर्थप्रकृति कहते हैं।

अवान्तर कथा के विच्छिन्न हो जाने पर भी प्रधान कथा के अविच्छेद का जो कारण है उसे बिन्दु नामक अर्थप्रकृति कहते हैं। अवान्तर कथा अर्थात् प्रासंगिक कथा। प्रधान (आधिकारिक) कथा के बीच में प्रसंगवश आने वाली कथा को प्रासंगिक अथवा अवान्तर कथा कहते हैं। प्रासंगिक कथा के समाप्त हो जाने पर भी जिसके कारण प्रधान कथा अविच्छिन्न रूप से चलती रहती है, उस अर्थप्रकृति को बिन्दु कहते हैं।

जैसे रत्नावली नाटिका में अनंगपूजा (कामदेव-पूजन) की समाप्ति होने पर कथा पूर्ण हो चुकी थी, किन्तु 'उदयनस्येन्दुरिवोद्वीक्षते' इत्यादि पद्य को सुनकर 'अरे, यही वह राजा उदयन है'– यह सागरिका का सहर्ष कथन कथा के अविच्छेद का हेतु है।

13.3.3 पताका

व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते।

यथा– रामचरिते सुग्रीवादेः, वेण्याः भीमादेः, शाकुन्तले विदूषकस्य चरितम्।

शब्दार्थ – व्यापि = (दूर तक) व्याप्त। प्रासङ्गिकम् वृत्तम् = प्रासंगिक इतिवृत्त कथा। पताका इति अभिधीयते = पताका कहलाती है अर्थात् उसे पताका नामक अर्थप्रकृति कहते हैं।

जो प्रासंगिक कथा दूर तक व्याप्त हो उसे पताका नामक अर्थप्रकृति कहते हैं। दूर तक व्याप्त होने वाली प्रासंगिक कथा का तात्पर्य है दूर तक चलने वाली अथवा लम्बी चलने वाली प्रासंगिक कथा। जैसे रामायण में सुग्रीव आदि की कथा, वेणीसंहार में भीम आदि की कथा और अभिज्ञानशाकुन्तल में विदूषक का चरित।

पताका-नायक का कोई अलग से (भिन्न) फल नहीं होता, अपितु प्रधान नायक के अभीष्ट फल को सिद्ध करने के लिए ही उसकी समस्त चेष्टायें होती हैं। गर्भ या विमर्श सन्धि में उसका निर्वाह कर दिया जाता है, जैसे सुग्रीव की राज्यप्राप्ति।

भरतमुनि ने इस सन्दर्भ में कहा है कि "आ गर्भाद्वा विमर्शाद्वा पताका विनिवर्तते" अर्थात् गर्भसन्धि में या विमर्शसन्धि में पताका समाप्त हो जाती है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार यहाँ पताका से अभिप्राय है – पताकानायक का फल क्योंकि कहीं-कहीं निर्वहण सन्धि तक भी पताका कथा चलती है।

13.3.4 प्रकरी

प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता।।68।।

यथा– कुलपत्यङ्के रावणजटायुसंवादः।

प्रकरीनायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम्।

यथा – जटायोः मोक्षप्राप्तिः।

शब्दार्थ – प्रासङ्गिकम् = प्रसंगवश उपस्थित। प्रदेशस्थम् चरितम् = एकदेशस्थित (अल्पदेश-व्यापी) चरित। प्रकरी मता = प्रकरी कहा जाता है।

प्रसंगवश उपस्थित तथा एकदेशस्थित (अल्पदेश-व्यापी) चरित को प्रकरी नामक अर्थप्रकृति कहते हैं, जैसे कुलपत्यङ्क रूपक में रावण और जटायु का संवाद।

शब्दार्थ – प्रकरीनायकस्य = प्रकरी-नायक का। स्वकीयम् = अपना। फलान्तरम् = कोई अलग फल। न स्यात् = नहीं होता है।

प्रकरी-नायक का कोई अपना अलग फल नहीं होता, जैसे जटायु की मोक्षप्राप्ति।

13.3.5 कार्य

अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः।।69।।

समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति संमतम्।

यथा– रामचरिते रावणवधः।

शब्दार्थ – यत् तु अपेक्षितम् साध्यम् = जो (अपेक्षित) प्रधान साध्य है। यन्निबन्धनः आरम्भः = जिसके लिए सब उपायों का आरम्भ किया जाता है। यत्सिद्ध्यै तु = जिसकी सिद्धि के लिए। समापनम् = (समस्त) समापन किया जाता है। तत् कार्यम् इति = उसे कार्य नामक अर्थप्रकृति। सम्मतम् = माना जाता है, कहा जाता है।

जो प्रधान साध्य है, जिसके लिए सब उपायों का आरम्भ किया जाता है, जिसकी सिद्धि के लिए समस्त समापन किया जाता है, उसे कार्य नामक अर्थप्रकृति कहते हैं, जैसे रामचरित में रावणवध।

13.4 कार्यावस्थायें

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।।70।।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।

शब्दार्थ – फलार्थिभिः = फल के इच्छुक पुरुषों के द्वारा। प्रारब्धस्य = आरम्भ किये गये। कार्यस्य = कार्य की। पञ्च अवस्थाः = पाँच अवस्थायें। आरम्भ-यत्न-प्राप्त्याशा-नियताप्ति-फलागमाः = आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

फल के इच्छुक पुरुषों के द्वारा आरम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं– आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। इनके स्वरूप का विवेचन इस प्रकार है –

13.4.1 आरम्भ

भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये।।71।।

यथा – रत्नावल्यां रत्नावल्यन्तःपुरनिवेशार्थे यौगन्धरायणस्यौत्सुक्यम्। एवं नायकनायिकादीनामप्यौत्सुक्यमारकेषु बोद्धव्यम्।

शब्दार्थ – मुख्य-फल-सिद्धये = मुख्य फल की सिद्धि के लिए, यद् = जो, औत्सुक्यम् = औत्सुक्य, उत्सुकता। (तद् = वह) आरम्भः = आरम्भ। भवेत् = होता है अर्थात् उसे आरम्भ नामक कार्यावस्था कहते हैं।

मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो औत्सुक्य है उसे आरम्भ नामक अवस्था (कार्यावस्था) कहते हैं।

जैसे रत्नावली नाटिका में राजकुमारी रत्नावली को अन्तःपुर (रनिवास) में लाने के लिए मन्त्री यौगन्धरायण की उत्कण्ठा। इसी प्रकार नायक नायिका आदि का भी औत्सुक्य (उत्सुकता/उत्कण्ठा) समझना चाहिए।

13.4.2 यत्न (प्रयत्न)

प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।

यथा रत्नावल्यां – तथापि नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथा तथा आलिख्य यथासमीहितं करिष्यामि। इत्यादिना प्रतिपादितो रत्नावल्याश्चित्रलेखनादिर्वत्सराजसङ्गमोपायः। यथा च– रामचरिते समुद्रबन्धनादिः।

शब्दार्थ – फलावाप्तौ = फलप्राप्ति के विषय में अर्थात् फलप्राप्ति के लिए। अतित्वरान्वितः = अत्यन्त त्वरा (शीघ्रता) से युक्त। व्यापारः तु = व्यापार (क्रियाकलाप)। प्रयत्नः = प्रयत्न नामक कार्यावस्था है।

फलप्राप्ति के लिए अत्यन्त त्वरायुक्त व्यापार (क्रियाकलाप) को यत्न अथवा प्रयत्न नामक कार्यावस्था कहते हैं।

जैसे रत्नावली में रत्नावली का चित्रलेखन। यह वत्सराज उदयन से रत्नावली के समागम का त्वरान्वित (शीघ्रता से युक्त) क्रियाकलाप प्रयत्न नामक कार्यावस्था है।

अथवा रामायण (रामचरित) में समुद्रबन्धन आदि।

13.4.3 प्राप्त्याशा

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।।72।।

यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के वेषपरिवर्तनाभिसरणादेः सङ्गमोपायाद्वासवदत्तालक्षणापायशङ्कया चानिर्धारितैकान्तसङ्गमफलप्राप्तिः प्राप्त्याशा।

एवमन्यत्र।

शब्दार्थ – उपायापायशङ्काभ्याम् = उपाय तथा अपाय की आशंकाओं से, प्राप्तिसम्भवः = प्राप्ति की सम्भावना। प्राप्त्याशा = प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था होती है।

जहाँ प्राप्ति की आशा उपाय तथा अपाय की आशंकाओं से घिरी हो, किन्तु प्राप्ति की सम्भावना हो, उस कार्यावस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं।

जैसे रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक में वेष-परिवर्तन और अभिसरण आदि तो संगम के उपाय हैं, किन्तु वासवदत्तारूपी अपाय (प्रतिबन्धक) की आशंका भी बनी है, अतः समागमरूप फल की प्राप्ति अनिश्चित होने से प्राप्त्याशा है।

13.4.4 नियताप्ति

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता।

अपायाभावान्निर्धारितैकान्तफलप्राप्तिः। यथा रत्नावल्याम् – 'राजा– देवीप्रसादनं त्यक्त्वा नान्यमन्त्रोपायं पश्यामि।' इति देपीलक्षणापायस्य प्रसादेन निवारणान्नियतफलप्राप्तिः सूचित।

शब्दार्थ – अपायाभावतः = अपाय के दूर हो जाने से। निश्चिता प्राप्तिः तु = फल की प्राप्ति सुनिश्चित हो तो। नियताप्तिः = नियताप्ति नामक कार्यावस्था होती है।

अपाय के दूर हो जाने से जो फल की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है, उसे नियताप्ति नामक अवस्था कहते हैं।

जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन का देवी वासवदत्ता के प्रसादन के लिए (प्रसन्न करने के लिए) तत्पर होना क्योंकि वासवदत्ता का रोष अपाय (बाधा/रुकावट) है। वासवदत्ता का रोष दूर होने पर ही उदयन और रत्नावली का समागम सुनिश्चित हो सकता था। इसलिए यहाँ उदयन का देवी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए तत्पर होने से उक्त समागमरूप फल की निश्चित प्राप्ति सूचित होती है। यह अवस्था नियताप्ति है।

13.4.5 फलागम (फलयोग)

सावस्था फलयोगः स्याद्यः समग्रफलोदयः।।73।।

यथा– रत्नावल्यां रत्नावलीलाभश्चक्रवर्तित्वलक्षणफलान्तरलाभसहितः।

एवमन्यत्र।

शब्दार्थ – यः = जो। समग्रफलोदयः = सम्पूर्ण फल की प्राप्ति। सा अवस्था = वह अवस्था। फलयोगः स्यात् = फलयोग अथवा फलागम नामक कार्यावस्था होती है।

जहाँ सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाये उस अवस्था को फलयोग अथवा फलागम नामक कार्यावस्था कहते हैं।

जैसे रत्नावली नाटिका में चक्रवर्तित्व के साथ रत्नावली की प्राप्ति होना। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

13.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने अर्थोपक्षेपकों, अर्थप्रकृतियों एवं कार्यावस्थाओं के विषय में अध्ययन किया। आप जानते हैं कि जो कथा अंक में दिखाने योग्य तो नहीं, किन्तु बतानी आवश्यक है, अथवा दो दिन से लेकर जो वर्षपर्यन्त होने वाली है एवम् इसके अतिरिक्त कोई अन्य कथा जो अतिविस्तृत हो, उसको भी अर्थोपक्षेपकों के द्वारा ही सूचित करना चाहिए। अर्थोपक्षेपक पाँच हैं – 1. विष्कम्भक, 2. प्रवेशक, 3. चूलिका, 4. अंकावतार, 5. अंकमुख। भूत और भविष्य की कथाओं का सूचक, कथा का संक्षेप करने वाला अंश विष्कम्भक कहलाता है। यह अंक के आदि में रहता है। यह शुद्ध विष्कम्भक एवं मिश्र विष्कम्भक के भेद से दो प्रकार का है। प्रवेशक भी विष्कम्भक के सदृश होता है, किन्तु इसका प्रयोग नीच पात्रों के द्वारा करवाया जाता है और इसमें उक्तियाँ उदात्त नहीं होती। इसका प्रयोग दूसरे अंक के आगे किया जाता है, पहले अंक में नहीं। जवनिका के भीतर स्थित पात्रों के द्वारा की हुई वस्तु (अर्थ) की सूचना को चूलिका कहते हैं। पूर्व अंक के अन्त में उसी के पात्रों द्वारा सूचित किया गया जो अगला अंक अवतीर्ण होता है उसे अंकावतार कहते हैं। जहाँ एक ही अंक में सब अंकों की अविकल सूचना की जाये और जो बीजभूत अर्थ का सूचक हो उसे अंकमुख कहते हैं।

नाट्य की कथावस्तु मे पाँच अर्थप्रकृतियाँ विद्यमान होती हैं – बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। अर्थप्रकृतियाँ फलप्राप्ति में उपायभूत होती हैं। पहली अर्थप्रकृति का नाम है – बीज। इसमें संक्षेप से कथा का निर्देश किया जाता है तथा उसके बाद वह विस्तार को प्राप्त करती है। अवान्तर कथा का विच्छेद हो जाने पर भी जो अर्थप्रकृति प्रधान (मुख्य) कथा का

विच्छेद नहीं होने देती अर्थात् टूटने नहीं देती, उसे बिन्दु नामक दूसरी अर्थप्रकृति कहते हैं। तीसरी पताका और चौथी प्रकरी ये दोनों अर्थप्रकृतियाँ प्रासंगिक कथा के ही भेद हैं। व्यापक अर्थात् दूर तक चलने वाली प्रासंगिक कथा को पताका कहते हैं। एकदेशस्थित प्रासंगिक कथावस्तु को प्रकरी कहते हैं। नायक को होने वाली फलप्राप्ति ही कार्य नामक पाँचवीं अर्थप्रकृति कहलाती है।

इसी प्रकार नायक के फलप्राप्ति हेतु किये जाने वाले कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं– आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम। फलप्राप्ति के लिए कर्म करने वाले की इच्छानुसार कार्य आरम्भ करने को आरम्भ नामक कार्यावस्था कहते हैं। फलप्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयत्न (प्रयास) को यत्न नामक कार्यावस्था कहते हैं। जहाँ फल की प्राप्ति में उपाय और अपाय (विघ्न) दोनों दृष्टिगोचर होते हों तथा कुछ आशंका के साथ फलप्राप्ति की आशा अथवा सम्भावना होने लगे तो वहाँ पर प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था होती है। अपाय का विनाश होने से फलप्राप्ति जब सुनिश्चित हो जाती है तो उसे नियताप्ति नामक कार्यावस्था कहते हैं। सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाने को फलागम नामक कार्यावस्था कहते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने अर्थोपक्षेपकों, अर्थप्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं के विषय में जानकारी प्राप्त की।

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पणम्,व्याख्याकार आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2010
- साहित्यदर्पणः, व्याख्याकारः पं. हरेकान्तमिश्रः, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली,2017
- साहित्यदर्पणः, व्याख्याकार श्रीशालिग्रामशास्त्रि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,1986।
- साहित्यदर्पण , व्याख्याकार मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः, अक्षयवट प्रकाशन प्रयागराज।

13.7 अभ्यास प्रश्न

1. अर्थोपक्षेपक कितने हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. नाटक में विष्कम्भक का प्रयोग क्यों किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
3. बीज नामक अर्थप्रकृति को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. यत्न नामक कार्यावस्था को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।